RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

200 वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

वर्ष: 50, अंक : 7 एक प्रति : 2 रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 14 मई, 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 7, 11-14 मई 2023 तदनुसार 31 वैसाख, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

हे परमेश्वर हम खरबूजे के तुल्य शरीर के बन्धन से छूटें!

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

यजु. ३६०

शब्दार्थ-त्र्यम्बकम् = रक्षा करने वाले परमेश्वर की हम, यजामहे = उपासना करते हैं जो, सुगन्धिं = अपने उपासको की कीर्ति को फैलाने वाला है, पुष्टिवर्धनम् = जो शरीर धन बल आदि को बढ़ाने वाला है, उर्वारुकम् = खरबूजे की तरह, बन्धनात् = बन्धन से, मृत्योः = मृत्यु के, मुक्षीय = मुक्त हो जाऊँ, मा = नहीं, अमृतात् = मोक्षानन्द से।

भावार्थ-यह एक प्रसिद्ध मंत्र है जिसका प्रतिदिन देश-विदेश में हजारों-लाखों व्यक्ति जप करते हैं। इसकी लोकप्रियता का कारण यह है कि इसमें मृत्युरुपी बन्धन (दु:ख) से छूटने की प्रार्थना की गयी है। सभी व्यक्ति जीवित रहना चाहते हैं। कोई भी मरना नहीं चाहता है, यदि फिर भी मृत्यु आती है तो मनुष्य चाहता है कि मुझे पुनर्जन्म न मिले मैं मोक्ष को प्राप्त कर लूँ। मनुष्यों को दु:ख देने वाली घटनाओं की सूची में सबसे ऊपर प्रथम क्रम में मृत्यु शब्द लिखा हुआ है। मृत्यु का भय सर्वव्यापक है। मृत्यु से बचने के लिए व्यक्ति कुछ भी इष्ट-अनिष्ट करने को सुसज्जित रहता है। यहाँ तक कि सर्वस्व तक को त्यागने को तैयार रहता है।

नीतिकारों ने भी लिखा दिया है कि ''आत्मार्थे पृथ्वीम् त्यजेत्'' अर्थात् यदि पूरी पृथ्वी का साम्राज्य दे देने से जीवन बचता है तो दे देना चाहिए। जीवन सभी को प्यारा है। मनुष्य मनुष्य से इतना भयभीत क्यों है इस पर विचार करें तो कुछ कारण समझ में आते हैं।

प्रथम-मनुष्य जीवन भर तक घोर पुरुषार्थ करके जो धन-सम्पति, प्रतिष्ठा, यश, कीर्ति आदि प्राप्त करता है और उनके प्रति राग बना हुआ होता है और उन सब वस्तुओं के प्रति स्व-स्वामी सम्बन्ध अधिकार की भावना भी बनी होती है, यह सब छूटते हुए दिखाई देते हैं, जो कि सहनीय नहीं होते हैं।

द्वितीय-प्राय: मनुष्यों को आत्मा की नित्यता पर पूर्ण दृढ़ विश्वास नहीं होता है, उन्हें ऐसा नहीं लगता है कि मेरा शरीर ही नष्ट होगा, आत्मा नहीं, आत्मा तो अजर-अमर है। मेरी आत्मा इस पुराने जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़कर, ईश्वर की व्यवस्था से नये शरीर को धारण करेगी।

तृतीय-मृत्यु के समय भय उत्पन्न होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि मनुष्य ने अपने जीवन काल में जो पाप, अधर्म, अन्याय आदि बुरे कर्म किये हैं उनका ईश्वर की ओर से न जाने कैसा, कब और कितना दण्ड मिलेगा, इस अनिश्चितता के कारण भी वह मृत्यु से भयभीत रहता है।

चतुर्थ-मृत्यु से भय का कारण यह भी होता है कि वह अपने समक्ष अनेक मृत्यु को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को रोता, बिलखता, तड़पता हुआ देखता है क्योंकि मृत्यु के समय सामान्य मनुष्यों की आत्मा जब शरीर से निकलती है तो उन्हें बहुत दु:ख होता है। इस कारण से मृत्यु घटना दु:खदायी कहलाती है। इन सभी कारणों से सामान्य मनुष्य मृत्यु से भयभीत रहता है।

इस मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि हे परमेश्वर! मेरी मृत्यु ऐसी हो कि उस समय मुझे किसी भी प्रकार के दु:ख की अनुभूति, पश्चाताप, ग्लानि और भय न हो किन्तु मैं शान्ति प्रसन्नता व धैर्यपूर्वक अपने शरीर को छोड़ूँ। इस स्थिति का सम्पादन करने के लिए आवश्यक है कि वह अपनी जवानी व प्रौढ़ावस्था में ऐसे बुरे काम न करे कि जिससे मृत्यु के समय दु:ख की अनुभूति हो।

मृत्यु कैसी होनी चाहिए? इसका एक उदाहरण मन्त्र में खरबूजे का दिया है। खरबूजा जब परिपक्व हो जाता है तो उसके रंग, रुप, आकार, गंध आदि अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं और वह खरबूजा स्वत: अपनी डाली से अलग हो जाता है, उसे बलात् तोड़ने की अपेक्षा नहीं होती है। ठीक ऐसे ही जब मनुष्य शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म तथा शुद्ध उपासना का ज्ञान देने वाले ''त्र्यम्बकम्'' नामक ईश्वर का शान्त, एकान्त स्थान में बैठकर ध्यान करता है तो वह परमेश्वर उसको महान ज्ञान, बल, आनन्द, धैर्य, दया, क्षमा, पुरुषार्थ, त्याग, तपस्या आदि गुणों से परिपूर्ण कर देता है। ऐसे व्यक्ति के उत्तम व्यवहार से समाज में उसकी प्रतिष्ठा, यश, कीर्ति फैलती हैं। वही श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाला व्यक्ति जब पूर्ण अवस्था को प्राप्त करके शरीर को छोड़ता है तो उसको किसी भी प्रकार का दु:ख नहीं होता है क्योंकि उसने जवानी से लेकर अब तक कोई भी पाप नहीं किया होता है। दु:ख तो उन्हें होता है जो पाप करते हैं।

हे उत्तम ज्ञान देकर अधर्मयुक्त व्यवहारों से बचाने वाले रुद्र परमेश्वर! हम आप से यह प्रार्थना करते हैं कि आप हमें उत्तमोत्तम ज्ञान प्रदान करो। जिससे हम कोई भी अनिष्ट कर्म न करें और आपकी निरंतर उपासना द्वारा अपने समस्त अविद्या के संस्कारों को नष्ट करके मोक्ष को प्राप्त कर लें। यही हमारी हार्दिक इच्छा है, जिसे आप अपनी कृपा से पूरी करेंगे, ऐसा हमको पूरा विश्वास है।

सत्यं शिवं सुन्दरम्

ले.-डा. सुशील वर्मा फाजिल्का

''सत्यं शिवं सुन्दरम''- मूलशंकर से स्वामी दयानन्द की यात्रा का यही मूल मन्त्र है। सत्य, शिव, आनन्दकारी एवं अनुपम की तलाश में निकला वह बालक न जाने कितने कण्टक मार्गों को, अनेक बाधाओं को चीरता हुआ अपनी जीवन यात्रा को एक उत्कृष्ट बना देता है। न जाने कितने लोगों ने उसे लूटा। एक सम्पन्न परिवार से निकला हुआ वह बालक अन्ततः संन्यासी बन समाज का कल्याण करता हुआ युग प्रवर्तक बना। मूलशंकर से शुद्ध चैतन्य, फिर संन्यास दीक्षा लेकर दयानन्द सरस्वती। योग के रहस्य ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरी से प्राप्त किए, ''योग शिक्षा के विषय में इन दोनों साधुओं का विशेष रूप से ऋणी हूँ।'' जीवन की पराकाष्ठा को पाने का उद्देश्य तो पूर्ण हुआ गुरु विरजानन्द जी की शिक्षा से 1 ई. 1860 से लेकर ई. 1863 तक। उसके बाद जितने भी व्याख्यान दिए, जितने शास्त्रार्थ किए, जितने ग्रन्थों की रचना की, वह इन तीन वर्षों के अध्ययन का ही परिणाम था। उनके तीन वर्षों के अध्ययन ने उनके जीवन, उनकी विचारधारा में जो क्रान्ति उत्पन्न कर दी उससे भारत के पिछले दो सौ वर्षों का इतिहास बन गया।

इस क्रान्ति का मूलस्रोत उनका ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश था। यह ग्रन्थ 1874 ई. में लिखा गया। मुरादाबाद के राजा जयकृष्ण दास जब काशी में डिप्टी कलेक्टर थे तब ऋषि दयानन्द काशी पधारे थे। राजा जयकृष्णदास ने ऋषि से कहा 'आपके उपदेशामृत में वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं जो आपका व्याख्यान सुनते हैं, जिन्हें व्याख्यान सुनने का अवसर प्राप्त नहीं होता उनके लिए आप अपने विचारों को ग्रन्थ के रूप में लिख दें तो जन मानस का बड़ा उपकार होगा। ग्रन्थ छपवाने का कार्यभार भी राजा जयकृष्णदास ने अपने उपर ले लिया। वह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जिसे पं. गुरूदत्त विद्यार्थी ने 14 बार पढ़कर कहा कि उन्हें हर बार के अध्ययन से उन्हें हर बार नया रत्न हाथ आता है। कुल साढ़े तीन माह में लिखा गया। इस ग्रन्थ में 377 ग्रन्थों का हवाला है (References) 1542 वेद मन्त्रों व श्लोकों का उद्धरण दिया गया है। चारों वेद, सभी उपनिषद्, छहों दर्शन, 18 स्मृतियाँ, पुराण, गृह्य सूत्र, जैन, बौद्ध, बाईबल, कुरान आदि ग्रन्थों के प्रमाण प्राप्य हैं। सभी ग्रन्थों के नाम, श्लोक, मन्त्रों के पते (References) मात्र $3^1/_2$ महीने में लिखे गए। आज भी कोई शोधार्थी किसी भी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से शोधग्रन्थ लिखना चाहे तो उसे सालों साल लग जाएंगे और उस समय तो पुस्तकें भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती थी। कार्लमार्क्स ने इंग्लैंड में बैठ कर 'DAS KAPITAL' ग्रन्थ 34 वर्ष में लिखा था जो कि उस समय का नवीन आर्थिक दृष्टिकोण के विषय में था जब कि स्वामी जी ने नवीन सामाजिक दृष्टिकोण के विषय में सत्यार्थ प्रकाश की साढ़े तीन महीने में इतने उद्धरणों के साथ रचना की।

समाज की रचना जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होनी चाहिए-सत्यार्थप्रकाश का यह एक इतना क्रान्तिकारी विचार है, जिससे हमारी 90 प्रतिशत समस्या हल हो जाती है। ऐसे संगठन से जन्म से न कोई नीचा, न ऊँचा, न गरीब न अमीर। जो कुछ हो कर्म से ही हो तो फिर कौन सी समस्या रह जाएगी।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विचार इसी ग्रन्थ की देन है। लोकमान्य तिलक ने कहा था ''स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।'' दादा जी भाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। परन्तु इन सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' के आठवें 'समुल्लास में' उल्लेख किया था-कोई कितना ही कहे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' 1874 में अंग्रेजी साम्राज्य में कोई व्यक्ति यह लिखने का साहस करे तो यह आश्चर्यजनक ही है।

हरिजन समस्या, स्त्रियों को शिक्षा समस्या, गरीबी की समस्या सभी के लिए शिक्षा, देश भाषा की समस्या, गौ-रक्षा समस्या, नवयुवक व नवयुवतियों की समस्या का समाधान ''सत्यार्थप्रकाश में मिलेगा।

हिन्दू समाज की सबसे बड़ी समस्या वेदों की थी। स्त्रियों और शुद्रो को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। क्योंकि दुष्प्रचार था कि ''स्त्री शुद्रोनाधीयताम्''। बाल विवाह के विषय में प्रचलित था ''अष्टवर्षा भवेत् गौरी, नववर्षा च रोहिणी, दस वर्षा भवेत कन्या तत् उर्ध्वा रजस्वला। माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्टवा कन्यां रजस्वलापं।। जन्म से वर्ण व्यवस्था का प्रमाण दिया जाता था।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्... शुद्रोऽअजायत।। यजु 31/11

ब्राह्मण परमात्मा के मुख से, शूद्र उनके पाँव से उत्पन्न हुए। जैसे मुख बाहु नहीं बन सकता उसी प्रकार ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण नहीं बन सकता।

हर संस्कृत वाक्य को वेद कहा जा रहा था। वेदों का उद्धरण देकर वेद मन्त्रों का अनर्थ किया जा रहा था। तब ऋषि दयानन्द ने निश्चय कर लिया था कि 'वेदों को ही केन्द्र बनाकर हिन्दू समाज की रक्षा की जा सकती है। वैदिक वाङ्मय के सम्बन्ध में ऋषि की खोज थी कि हर संस्कृत वाक्य वेद नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थ उपनिषद्, स्मृति, पुराण, सूत्र ग्रन्थ-ये सब वेद नहीं है, इन ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है, अगर वह वेद विरुद्ध है तो वह त्याज्य है और जो वेदानुकूल है वही ग्राह्य है।

उनका कहना था कि अगर तुम वेद को अपनी संस्कृति का आधार मानते हो तो इस पैमाने को लेकर चलना होगा कि ''तुम जो चाहे वह वेद नहीं, वेद जो है, वही मानना होगा।''

इसके अतिरिक्त उनका यह भी कहना था कि वेदों के शब्द रूढ़ी नहीं है, यौगिक है। यही निरुक्तकारों का कहना था। सायण, उब्वट, महीधर तथा उनके पीछे चलते पाश्चात्यों ने मैक्समूलर, राथ, विल्सन, आदि सभी मक्खी पर मक्खी मार रहे थे। उसी के अनुसार उन्होंने अनुवाद किए। सायण एक तरफ तो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे, दूसरी तरफ उनमें इतिहास भी मानते थे, जो कि वेदों के सिद्धान्त के विपरीत है। सायण दक्षिण के विजय नगरम् हिन्दू राज्य के राजा हरिहर और बुक्का के वे मन्त्री थे। मुस्लिम संस्कृति राज्य में प्रतिष्ठित न हो जाए, इस उद्देश्य से संस्कृत वाङ्मय का प्रसार किया गया। उनके भाष्य गहराई तक नहीं पहुँच पा सके और असंगत बातों के शिकार रहे। वह समय यज्ञों का समय था। भाष्यकारों की यह धारणा थी कि वेदों में दिए गए अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवता स्वर्ग से यज्ञों में पधारते हैं, दान दक्षिणा आदि लेकर तथा यजमान को आशीर्वाद देकर स्वर्ग चले जाते हैं। यह बात पाश्चात्य विद्वानों को उनकी विचारधारा के अनुकूल पड़ती थी। क्योंकि उनका विचार विकासवाद पर आश्रित था (Darwin Theory) आदिमानव जंगली था और जंगली मानव सूर्य को, अग्नि को, वायु आदि को देवता समझ कर पूजे तो यह युक्ति युक्त प्रतीत होती है। इसलिए पाश्चात्य विद्वान कहने लगे कि वैदिक ऋषि जंगली थे इसीलिए अनेक देवताओं की पूजा करते थे।

ऋषि दयानन्द ने इन विचारों को ठोकर मार कर गिरा दिया। वेदों से ही उन्होंने सिद्ध किया कि अग्नि, इन्द्र, वायु, आदि नाम भिन्न भिन्न देवताओं के नहीं अपितु एक ही परमेश्वर के अनेक नाम है। ''एकं सदविप्रा बहुधा वदन्ति'' (ऋग् 1,164,46) उन्होंने बताया कि वैदिक शब्दों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं-आधिभौतिक, आधिदैवत और आध्यात्मिक। इन्द्र का आधिभौतिक अर्थ-अग्नि, विद्युत, सूर्य अधिदैविक-राजा, सेनापति, अध्यापक, दैवी गुण युक्त व्यक्ति आध्यात्मिक-जीवात्मा, परमात्मा आदि।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

जननी और जन्म भूमि स्वर्ग से भी महान है?

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

जननी अर्थात् माता और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से भी श्रेष्ठ और महान् है क्योंकि माता बालक को अच्छे संस्कार देकर उसके जीवन का कल्याण करती है, उसे संस्कारी बनाती है और जन्मभूमि संस्कृति व सभ्यता देती है। अच्छे संस्कारों पर आधारित संस्कृति और सभ्यता देश का गौरव बनते हैं। माता बालक को धर्मपूर्वक और विचारपूर्वक अच्छे संस्कार दे सकती है। माता का प्यार, दुलार व वात्सल्य अतुलनीय है। जिस प्रकार माता बच्चों को जन्म देती है तथा उनका पालन पोषण करती है। अनेक कष्टों को सहते हुये भी बाल की खुशी के लिये अपने सुखों का परित्याग करने में भी नहीं चूकती उसी प्रकार जन्म भूमि जन्मदात्री की भांति ही अनाज उत्पन्न करती है। वह अनेक प्राकृतिक विपदाओं को झेलते हुये भी अपने बच्चों का लालन-पालन करती है। अत: किसी कवि ने सच ही कहा है कि वह लोग जिन्हें अपने देश तथा अपनी जन्म भूमि से प्यार नहीं है उनमें सच्ची मानवीय संवेदनाएं नहीं हो सकती। इसी प्रकार जन्मभूमि की महत्ता हमारे समस्त भौतिक सुखों से कहीं अधिक है। आज मनुष्य ने नित नए आविष्कारों से दुनिया के देशों को वैभवशाली बना दिया। विज्ञान ने असम्भव को सम्भव बना दिया और आज मनुष्य उसके प्रभाव में दौड़ा चला जा रहा है। इस दौड़ का विश्लेषण करने पर पाते हैं कि मनुष्य ने भौतिक उन्नति को ही जीवन का मूल्य बना दिया है। मनुष्य जीवन का संस्कारी हिस्सा जैसे अन्तर्धान हो गया है। शरीर और मन का तादात्म्य नहीं रहा। जीव और शरीर को चलाने वाला ईश्वर या शक्ति कहां है, क्यों है इसे सोचना हमने छोड़ दिया है। वेदों पर आधारित सम्पूर्ण मानवी जीवन की रचना इतनी सुयोजित और स्वाभाविक है कि उसे अपनाने पर हम श्रेष्ठ समाज का निर्माण कर सकते हैं। अत: जननी और जन्मभूमि दोनों ही वंदनीय हें। दोनों ही अपना वात्सल्य अपने अपने रूपों में पुत्र पर न्यौछावर करती हैं। इनकी रक्षा और सम्मान हमारा उत्तरदायित्व है। इनकी अवहेलना कर कोई भी देश अथवा समाज का व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में माता और जन्म भूमि के आदर सम्मान के साथ ही मनुष्यता का पूर्ण विकास भी संलग्न है। जीवन की चरितार्थता भी तभी सिद्ध होती है।

हमारे शास्त्रों में कहा है कि एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर है। इसलिए यह माताओं का कर्त्तव्य है कि वे अपने बालकों को ऐसे संस्कार दें, ऐसी शिक्षा दें कि जिससे वे राष्ट्र का गौरव कहला सकें, राष्ट्र का सम्मान कहला सकें। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जिन अवस्थाओं में से मनुष्य को गुजरना है उसका ज्ञान कर्मकाण्ड द्वारा कराया जाता है। उसका प्रभाव मन पर पड़ता है और अनुभव के साथ-साथ बालक उसे तुलनात्मक दृष्टि से देखने लगता है। समय आने पर उसका सदुपयोग करता है। इसलिए बच्चों को अच्छे संस्कार मिलने चाहिए। ये उसके जीवन के सोपान हैं।

एक बार एक अन्धा हाथ में लालटेन लिए उबड-खाबड़ पगडंडी पर चला जा रहा था। सामने से आते हुए भाई ने यह देखा तो उसे विस्मय हुआ। उसने अन्धे को रोककर पूछा कि आप लालटेन लेकर क्यों चल रहे हो? आपको तो दिखाई ही नहीं देता है। उस अन्धे ने उत्तर दिया कि यह लालटेन आपके लिए है। आप जैसे लोग आँखों के होते हुए भी मुझसे टकरा जाते हैं। कितना तथ्य है इस घटना में। अन्धा देख नहीं सकता और हम देखते हुए भी अन्धे हैं। वेद का प्रकाश हमें राह दिखा रहा है फिर भी हम टकराते हैं क्यों-बिजली की चकाचौंध में हम कहां गिरेंगे और हमारा क्या होगा? खाना-पीना, दिन में सोना और रात को जागना, इसकी नकल, उसकी नकल, यही सब करके समझना कि यही मेरा व्यक्तित्व है। अपनापन खोकर, दूसरों की खाल ओढ़ लेना गौरव की बात नहीं है। जिस भूमि पर जन्म लिया हो उसकी परम्परा और सभ्यता को निभाना बहुत बड़ी बात है। समाज की नींव जिस परम्परा पर आधारित है, उसी पर उसके अनुरूप भवन बनाना चाहिए। अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूलकर मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। दूसरे के अच्छे नक्शे को अपने अपने ढांचे मे बिठाना चाहिए। आज मनुष्य का उद्देश्य केवल पैसा बन गया है। आज का मनुष्य भौतिक उन्नति के द्वारा सब प्रकार के सुख प्राप्त करना चाहता है। गाड़ी, बंगला, जमा पूंजी इकठ्ठी करना ही मनुष्य का लक्ष्य है। हमने शरीर को भोजन दिया पर मन भूखा ही रह गया। अन्त के साथ उपासना भूल गए हैं। हमें याद रखना होगा कि भौतिक सुख शरीर को पुष्ट करेगा। वैसे ही उपासना मन को पुष्ट करेगी। पुष्ट मन शरीर की इच्छाओं पर काबू पा सकेगा। इसलिए शरीर और आत्मा का मेल बुद्धिपूर्वक करना बहुत ही जरूरी है। विवेक व बुद्धि का सदुपयोग करना मनुष्य की विशेषता है। मनुष्य मनुष्य नहीं कहलाता जब तक वह बुद्धि के द्वारा अपने कार्यों पर सोच विचार कर नहीं करता। अच्छे-बुरे, लाभ-हानि, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म की विवेचना करना बुद्धिमानों का काम है। इसी को जीवन का मूल्य समझना चाहिए। जीवन देने वाला, उसे बनाने वाला और चलाने वाला कौन है? यह जान लेने के बाद मन में जो आस्था उत्पन्न होती है और उसी आस्था के आधार पर मनुष्य अच्छे कर्मों को करने का संकल्प करता है। वेदों के आधार पर मनुष्य कर्म करने का संकल्प करता है तो उसकी चेतना जागृत होती है। वेद मन्त्र कहता है कि-

स्वस्ति पन्थामनुचरेम् सूर्याचन्द्रसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्र के समान हम कल्याणकारी मार्ग पर चलें और दानी, अहिंसक तथा विद्वान् पुरूषों का साथ करें। वेद का आदेश है कि हम कल्याणकारी मार्ग पर चलने का प्रयास करें। जिस प्रकार सूर्य चन्द्र अपनी निश्चित स्थिति पर रहते हुए पृथ्वी पर दिन और रात का सृजन कर जीव मात्र का कल्याण करते हैं उसी तरह हमें भी नियमित जीवन के द्वारा दूसरों का कल्याण करना चाहिए। सूर्य और चन्द्र का प्रकाश पाने के लिए पृथ्वी निरन्तर घूमती रहती है। उसे किसी बात का प्रलोभन नहीं, इसलिए वह ईश्वर की कृपा से दिन और रात का वरदान पाकर जीव मात्र का कल्याण करती है।

नारी की तुलना पृथिवी से की गई है। उसे लोभ और मोह से दूर रहकर बच्चों को नियमित जीवन की आदत ड़ालनी चाहिए। क्योंकि लालच और मोह मन को भटका देते हैं और हम प्रलोभनों के घेरे में बन्द हो जाते हैं। माता-पिता को सन्तान का निर्माण करते समय नारियल के फल के समान व्यवहार करना चाहिए जो देखने में ऊपर से कठोर होता है परन्तु भीतर से कोमल होता है। माता का हृदय समुद्र के समान विशाल होता है और उसके हृदय में अपनी सन्तान के हित की कामना होती है। माता चाहे तो अपनी सन्तान को धार्मिक, विद्वान्, सभ्य, देशभक्त और चरित्रवान बना सकती है परन्तु यदि लाड़ प्यार में उसकी गलतियों पर ध्यान नहीं देती, उसके कार्यों पर ध्यान नहीं देती तो सन्तान कुमार्ग पर चल पड़ती है। माता बालक का लालन पालन करके उसे महान् बनाने का स्वप्न देखती है। उस स्वप्न को वह तभी पूर्ण कर सकती है जब वह उसके अन्दर सद्गुणों का विकास करके उसे अपनी सभ्यता, संस्कृति और मातृभूमि का उपासक बना दे। अपनी संस्कृति, सभ्यता और मातृभूमि को भूलकर मनुष्य कभी महान् नहीं बन सकता। वेद कहते हैं मातृभूमि पुत्रो अहं पृथ्व्या:। यह भूमि हमारी माता है और हम सभी इसके पुत्र अत: हम सबका धर्म है कि हम जननी व जन्म भूमि की रक्षा के लिए सर्वदा तैयार रहें।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

श्रीमद् भगवत् गीता में ज्ञान की महत्ता और ज्ञान प्राप्ति

ले.-शिवनारायण उपाध्याय कोटा (रजि.)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद का भाष्य करते हुए लिखा है, ज्ञान से अधिक मूल्यवान् कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है। सभी वैदिक विद्वानों का भी यह मत है कि ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं है। मुक्ति के विषय में लिखते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में मुक्ति के साधनों में प्रथम स्थान विवेक को ही दिया है। दूसरे सभी अन्य आचार्यों का भी यही मत है।

श्रीमद्भगवत् गीता भी इसी मत का समर्थन करती हुई जान पड़ती है। इस लेख में हम गीता के आधार पर ही ज्ञान की महत्ता एवं ज्ञान की प्राप्ति पर विचार करेंगे।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। गीता 4.38।।

अर्थ-(इह) इस संसार में (ज्ञानेन) ज्ञान के (सदृशम्) समान (पवित्रम्) पवित्र करने वाला (हि) निश्चय से कोई दूसरा (न) नहीं (विद्यते) दिखाई देता है। (योग संसिद्धः) जिसका योग भली-भांति सिद्ध हो गया है (वह कर्मयोगी) (तत्) उस तत्व ज्ञान को (कालेन) अवश्य ही (स्वयम्) स्वयं (आत्मनि) अपनी आत्मा में, अपने आप में (विन्दति) पा लेता है।

भावार्थ-इस पृथ्वी लोक में मानव जीवन के कल्याण के लिए ज्ञान के समान पवित्र करने वाला दूसरा कोई भी साधन उपलब्ध नहीं है। बिना योग के पूर्ण ज्ञान कभी भी प्राप्त नहीं होता है। जिस योगी को योग भली प्रकार से सिद्ध हो जाता है वह तत्व ज्ञान को भी प्राप्त कर लेता है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परन्तप।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।गीता 4.33।।

अर्थ-(परन्तपः पार्थ) हे तपस्वी अर्जुन। (द्रव्यमयात्) द्रव्यमय (यज्ञात्) यज्ञ से (ज्ञान यज्ञः) ज्ञानयज्ञ (श्रेयान्) श्रेष्ठ है। (सर्वम्) सम्पूर्ण (कर्म) कर्म (और) (अखिलम्) पदार्थ (ज्ञाने) ज्ञान (तत्व ज्ञान) में (परिसमाप्यते) समाप्त हो जाते हैं, लीन हो जाते हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिए जिज्ञासु मनुष्य क्या करें? इस पर श्रीमद्भगवत् गीता का कथन है-

तद्विद्धि प्रणिपातेन परि पश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

गीता 4.34।।

अर्थ-(तत्) उस तत्व ज्ञान को (विद्धि) (तत्वदर्शी ज्ञानी महापुरूष के पास जाकर) समझ (प्रणिपातेन) उनको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने से (सेवया) उनकी सेवा करने से और (परिप्रश्नेन) सरलता पूर्वक प्रश्न करने से (ते) वे (तत्वदर्शिनः) तत्वदर्शी (अनुभवी) (ज्ञानि नः) ज्ञानी महापुरूष (ज्ञानम्) (तुझे उस) तत्व ज्ञान का (उपदेक्ष्यन्ति) उपदेश देंगे।

भावार्थ-ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ ज्ञानी पुरूष की शरण में जाकर उसका सन्मान करके, उसकी सेवा करके उनसे सरलता पूर्वक प्रश्न करना चाहिए। तब वे ज्ञानी महापुरूष तत्व ज्ञान का उपदेश देंगे।

तत्व ज्ञान का फल क्या होगा इस पर कहा गया है-

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं वास्यसि पाण्डव।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।गीता 435।।

अर्थ-(यत्) जिस (तत्व ज्ञान) का (ज्ञात्वा) अनुभव करने के बाद (तू) (पुनः) फिर (एवम्) इस प्रकार (मोहम्) मोह को (न) नहीं (यास्यसि) प्राप्त होगा। (पाण्डव) हे अर्जुन। (येन) जिस (तत्व ज्ञान) से (भूतानि) (तू) सम्पूर्ण प्राणियों को (अशेषेण) निःशेष भाव से (पहले) (आत्मनि) अपने में (और) (अथो) उसके बाद (मयि) मुझ ईश्वर में (द्रक्ष्यसि) देखेगा।

भावार्थ-तत्व ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मनुष्य को मोह नहीं होता है। तत्व ज्ञान से मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों को निःशेषभाव से पहले अपने में और फिर परमात्मा में देखता है। मंत्र में कृष्ण ने अपने को परमात्मा कहा है वह ठीक नहीं है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरूतेऽर्जुन।

ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा।।

गीता 4.37।।

अर्थ-(अर्जुन) हे अर्जुन। (यथा) जैसे (समिद्धः) प्रज्जवलित (अग्निः) अग्नि (एधांसि) ईधन को (भस्म सात्) सर्वथा भस्म (कुरूतो) कर देती है (तथा) ऐसे ही (ज्ञानाग्निः) ज्ञान रूपी अग्नि (सर्व कर्मणि) सम्पूर्ण कर्मों को (भस्मसात्) सर्वथा भस्म (कुरूते) कर देती है।

भावार्थ-इस लोक में कहा गया है कि जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को जला देती है वैसे ही ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मों को सर्वथा भस्म कर देती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए शास्त्रों और उपदेशक में श्रद्धा भी होना आवश्यक है। गीता में इस विषय में कहा गया है-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम-चिरेणाधिगच्छति।।

गीता 4.39।।

अर्थ-(संयतेन्द्रियः) जो जितेन्द्रिय (तथा) (तत्परः) साधन परायण है (ऐसा) (श्रद्धावान्) श्रद्धावान् पुरूष (ज्ञानम्) ज्ञान को (लभते) प्राप्त होता है (और) (ज्ञानम्) ज्ञान को (लब्ध्वा) प्राप्त करके (वह) (अचिरेण) तुरन्त (पराम्) परम (शान्तिम्) शान्ति को (आधि गच्छति) प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ-जितेन्द्रिय, साधन परायण और श्रद्धावाम् पुरूष ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो जाता है। ज्ञान को प्राप्त करके वह तुरन्त शान्ति को भी पा लेता है। ज्ञान प्राप्ति में कैसा व्यक्ति असफल रहता है इस पर कहा गया है-

अज्ञश्चा श्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।गीता 4.40।।

अर्थ-(अज्ञः) विवेकहीन (च) और (अश्रद् दधानः) श्रद्धाहीन (संशयात्मा) संशयात्मा मनुष्य के लिए (न) न तो (अयम्) यह (लोकः) लोक (हितकारक) (अस्ति) है (न) और नहीं (परः) परलोक (हितकारक) है (च) और (न) न (सुखम्) सुख ही है।

भावार्थ-विवेकहीन और अश्रद्धालु संशयात्मा मनुष्य के लिए लोक परलोक दोनों ही हितकारक नहीं है। वह सुखी जीवन भी नहीं पा सकता है।

उधर श्रीमद् भगवत् गीता पुनर्जन्म का स्पष्ट रूप से समर्थन कर रही है। जब श्रीकृष्ण ने कहा कि मैंने इस अविनाशी योग को (कर्म योग को) सूर्य से कहा था फिर सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने इस्वाकु से कहा है। गीता 4.1

तब अर्जुन ने कहा कि आपका जन्म तो अभी हुआ है और सूर्य का जन्म तो बहुत पुराना है अतः आपने ही सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य से यह योग कहा था, यह बात में कैसे स्वीकार करूँ। (गीता 4.4) इससे उत्तर में श्रीकृष्ण कहते है-

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।गीता 4.5।।

अर्थ-(परन्तप) हे परन्तप (अर्जुन) अर्जुन। (मे) मेरे (च) और (तव) तेरे (बहूनि) बहुत से (जन्मानि) जन्म (व्यतीतानि) हो चुके है (तानि) उन (सर्वाणि) सब को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ। (त्वम्) तू (न) नहीं (वेत्थ) जानता।

भावार्थ-इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि हे अर्जुन। मेरे और तेरे कई जन्म हो चुके है मैं उन जन्मों को (योग सिद्ध से) जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने अपने को ईश्वर के रूप में नहीं बताया है। ईश्वर के जन्म होते भी नहीं है वह तो अज है।

फिर 8वें श्लोक में बताया है कि मैं जन्म क्यों लेता हूँ।

परित्राणाय साधूनां बिनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।गीता 4.8।।

अर्थ-(साधूनाम्) साधुओं की (परित्राणाय) रक्षा करने के लिए (दुष्कृताम्) पाप कर्म करने वालों

(शेष पृष्ठ 7 पर)

प्रिय एवं सत्य ही बोलें

ले.-श्री नरेन्द्र आहूजा

मनुष्य को जीवन में सदैव सत्य भाषण करना अपेक्षित है। वहीं साथ ही इस सत्य भाषण को भी निर्देशित करते हुए कहा कि मनुष्य को सदैव प्रिय सत्य ही बोलना चाहिए। किसी भी मनुष्य की प्रथम पहचान उसकी वाणी से ही होती है। इसीलिए देव दयानन्द ने व्यवहारभानु में सत्पुरुष के लक्षण लिखते हुए कहा ''जैसा आत्मा का ज्ञान वैसा वचन और जैसा वचन वैसा कर्म करना सत्पुरुष का लक्षण है'' अर्थात् मन वचन कर्म की एकरूपता सत्यपुरुष या महात्मा की पहचान है। सत्पुरुष महात्मा की पहचान स्पष्ट करते हुए कहा गया ''मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्'' बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है ''सत्यं ब्रह्मेति सत्यं ह्येव ब्रह्म''-बृहद् ५/४/१ अर्थात् सत्य का ही नाम ब्रह्म है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य के लिए जीवन में सदैव सत्य बोलना ही अपेक्षित है।

वैसे भी दैनिक व्यवहार में हम देखते हैं कि मनुष्य एक झूठ बोलकर उसे छिपाने के लिए लगातार झूठ बोलता चला जाता है और अंततः मकड़ी की भांति अपने ही बनाये झूठ के मकड़जाल में फंसकर रह जाता है। मोबाइल पर बोला जाने वाला झूठ इसका एक उदाहरण है। अचानक ही मोबाइल पर एक पुराने मित्र का फोन आया आदतन बस यह सोचकर कि घर आएगा तो सारे दैनिक कार्यों में विघ्न पड़ेगा, कह दिया 'मित्र बाहर दिल्ली आया हुआ था।' मित्र ने बड़ी प्रसन्नता से कहा 'यह तो अच्छा हुआ मैं भी अभी ट्रेन से दिल्ली उतरा हूँ, तुम स्टेशन आ जाओ।' अब वह अपने बोले झूठ के मकड़जाल में फँसता चला जा रहा था। वैसे भी यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के तीसरे मंत्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं ''जो लोग आत्मा में जानते, वाणी से बोलते और करते कुछ और ही हैं वे राक्षस, असुर व पिशाच हैं।'' देव दयानन्द आर्योद्देश्य रत्नमाला में सत्यभाषण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं ''जैसा कुछ अपने आत्मा में हो उसे असम्भव आदि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोलना सत्य भाषण कहलाता है।'' उपनिषदों में भी सत्य को ब्रह्म कहा गया और बताया गयतत्ये प्रतिष्ठितम्' ब्रह्म सत्य में ही प्रतिष्ठित होता है। अतः सत्य व सत्याविद्या से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है।

लेकिन सत्यभाषण को और अधिक स्पष्ट रूप से निर्देशित करते हुए कहा गया केवल प्रिय सत्य ही बोलें। मनु महाराज ने सत्य के विषय में कहा है-

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्म सनातनः।। मनु. 4/138

अर्थात् सत्य बोलें, प्रिय बोलें, अप्रिय सत्य न बोलें परन्तु प्रिय बोलने में भी असत्य न बोलें यही शाश्वत धर्म है। इसीलिए कहा गया है वाक्क्षतं न प्ररोहति अर्थात् वाणी का दिया घाव कभी नहीं भरता। यह वाणी का घाव ही तो था जब द्रौपदी ने दुर्योधन को 'अन्धे का अंधा पुत्र' कहकर व्यंग्य किया था। उसी वाणी के घाव ने महाभारत का युद्ध करवा दिया। कबीर जी ने बड़े सरल शब्दों लिखा-

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय।।

संत तुलसीदास ने भी प्रिय सत्य मीठी वाणी की उपयोगिता बड़े सरल शब्दों में बताई-

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तज दे वचन कठोर।।

कविवर रहीम भी कठोर कड़वे वचन के त्याग के लिए कहते हैं-

खीरा सिर ते काटिए, मलिये नोंन लगाय।
रहिमन कड़वे मुखन को, चहिये यही सजाय।।

वैसे भी कहा जाता है जिह्वा तो कड़वे वचन बोलकर दांतों के दुर्ग में छिप जाती है लेकिन जूते सिर को खाने पड़ते हैं-

रहिमन जिह्वा बावरी, कह गई सुरग पताल।
आपहुँ तो भीतर घुसी, जूती खात कपाल।।

वाणी के संयम को ही तप कहा गया है और मनुष्य के लिए जीवन में सदैव तोल मोल कर बोलने का निर्देश है अर्थात् किसी को कुछ भी कहने से पूर्व मनुष्य उसे तर्क की कसौटी पर कसकर देख लें कि यदि ऐसे वचन मुझे सुनने पड़े तो मुझे कैसा लगेगा। इस प्रकार कुछ भी बोलने से पहले उस पर विचार करना और केवल सत्य ही नहीं अपितु प्रिय सत्य बोलना हम सभी के लिए अपेक्षित है। अंगस्पर्श मंत्रों में सर्वप्रथम 'ओं वाङ्:म आस्येऽस्तु। अर्थात् हे परमेश्वर मेरे मुख में वाक्शक्ति प्रशस्त हो, की कामना की गई है। वेदों में भी विभिन्न स्थानों पर कठोर वचन के त्याग तथा प्रिय सत्य मधुर वाणी बोलने का आदेश दिया गया है 'उग्रं वचो अपावधीः' सामवेद ३५३ अर्थात् हे मनुष्य कठोर वचन त्याग दो। (जिह्वाया अग्रे मधु मे-अथर्ववेद १/३४/२ अर्थात् मेरी जिह्वा के अग्रभाव पर माधुर्य हो। वाचा वदामि मधुमत्-अथर्व १/३४/३ अर्थात् मैं वाणी से मधुर बोलूँ।

इस प्रकार मनुष्य के लिए जीवन में सदैव न केवल सत्य अपितु प्रिय सत्य बोलना ही अपेक्षित है। बाह्य आभूषणों से मनुष्य की शोभा नहीं बढ़ती अपितु सुसंस्कृत प्रिय सत्य मीठे वचन ही मनुष्य का सच्चा आभूषण है और इसी से मनुष्य की कीर्ति बढ़ती है।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।

-पू० १.१.१.३

भावार्थ-हे सकल ज्ञान विज्ञान के ज्ञाता एवं वेदविद्या के प्रदाता सर्वज्ञ परमेश्वर! आप ही प्राणीमात्र के लिये सुख प्रदाता एवं सबके दुःखों को हरण करने वाले हैं। हे प्रभु! आप ही जीव मात्र को उनके कर्मानुसार पूर्णरूप से न्यायपूर्वक कर्मफल प्रदान करने वाले भी हैं। यज्ञ रूप ब्रह्माण्ड को भी सर्वव्यापक होकर आप ही धारण कर रहे हैं, हे सदैव श्रेष्ठ व सुन्दर कर्मों को करने वाले सुक्रतु परमात्मा! आप ही पतित से पतित, पापी से पापी व्यक्ति को भी उसका कर्मफल देकर या उससे दण्डित कर उसका सुधार करने वाले हैं।

हे प्रभु! आपके समान वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ सुख के प्रदाता, समस्त दुःखों के हर्ता न्यायपूर्वक सभी फल देने वाला और कोई भी नहीं है। हे नाथ! हमें आपका ही सहारा है, आपका ही आसरा है व आप परमात्मा पर ही पूर्ण विश्वास है। संसार के सभी वरणीय पदार्थों में से आप ही सर्वश्रेष्ठ वरणीय हैं। हे परम कृपालु प्रभु! हम पर कृपा करिये कि हम सदा शुभ कर्म करें, कभी कोई पाप कर्म नहीं करें और दुःख के भागी नहीं बनें अतः हे यज्ञ स्वरूप भगवन्! हम आपके भक्तगण आपका ही वरण करते हैं और आपके शरण में आते हैं हमें आपके शरण में स्थान दीजिए व समस्त दुःखों से हमारा उद्धार करिये।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः।।

-पू० १.१.१.४

भावार्थ-हे अनन्त ज्ञानवान, बलवान, धनवान, दयावान, परमात्मा! आप श्रद्धापूर्वक भक्तिभाव से स्तुति प्रार्थना उपासना किये जाने पर अपने भक्तों को आत्मिक बल प्रदान करते हैं तथा तत्त्वज्ञान, विवेक, वैराग्य प्रदान करते हुए सभी ईश्वर भक्तों के अविद्या आदि क्लेशों को, दुखों को नष्ट करते हैं व अपने ब्रह्मानन्द में मग्न कर देते हैं।

हे दयानिधान! हम पर कृपा करिये। हमें शक्ति, भक्ति व दृढ़ एकाग्रता से युक्त करते हुए एवं समाधि की प्राप्ति कराते हुए आपके अद्भूत सुख शान्ति की अनुभूति कराइये। इस प्रकार हे दया के सागर! हमारे अविद्याजनित राग द्वेष आदि समस्त क्लेशों को दग्धबीज कराकर आपके परम आनन्द-ब्राह्मानन्द का हमें पान कराइये। यही आप से प्रार्थना है, इस प्रार्थना को स्वीकार करिये, स्वीकार करिये, स्वीकार करिये।

कर्म का सिद्धान्त

ले.-श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय

(गतांक से आगे)

(प्रश्न २६)-जब समस्त सृष्टि ईश्वर की व्यवस्था के आधीन है और हम सब भी सृष्टि के अंग हैं तो सत्या-सत्य कर्तव्या-कर्त्तव्य, कर्म और भोग की विवेचना की उलझनों में क्यों पड़ना? होगा तो वही जो ईश्वर की व्यवस्था के भीतर है।

उत्तर-ईश्वर की व्यवस्था जड़ और चेतन के लिए एक सी नहीं है, सृष्टि की जटिलतम समस्या यह है कि जड़ और चेतन में भेद किया जाए। ईश्वर की व्यवस्था जहाँ तक जड़ चीज़ों पर पूरा आधिपत्य रखती है वहाँ चेतन चीज़ों को अपने कर्म क्षेत्र में पूरी पूरी स्वतंत्रता भी है। सृष्टि के निर्माण में चेतन शक्तियों का पूरा पूरा साझा है। नैसर्गिक शक्तियों का चेतन शक्तियाँ निर्वचन पूर्वक प्रयोग किया करती है। चीटियों के चिटोंहर, बया के घोंसले, भेड़ियों की मांदें, और सहस्त्रों अन्य जीवों की बनाई हुई चीजें यही बताती हैं कि चेतन जीव ईश्वर-नियंत्रित नियमों का निरन्तर विवेचना पूर्ण उपयोग किया करते हैं और सृष्टि में परिवर्तन किया करते हैं। सभ्य जातियों के नगर, सड़कें आदि इस बात की सूचना देते हैं कि जिस सृष्टि में हम रहते हैं वह केवल ईश्वर निर्मित ही नहीं है उसमें मनुष्य तथा अन्य प्राणियों का भी साझा है। बया जो घोंसला बनाती है उसमें घोंसला निर्माण की कला चाहे कितनी ही स्वाभाविक और स्वतंत्रता शून्य अथवा शिक्षानपेक्षित क्यों न हो उसकी सामग्री के जुटाने आदि में पक्षी को पर्याप्त निर्वाचन करना पड़ता है। अत: जीव को कर्म करने में स्वतंत्रता सुरक्षित है। सृष्टि के प्रयोजन ही दो हैं। जीव का भोग और जीव का कर्म। सृष्टि इन दोनों प्रयोजनों के लिये सर्वथा उपयुक्त है। भोग का परिणाम है बौद्धिक विकास। उस विकास का प्रभाव पड़ता है कर्तव्यता के निर्वाचन पर। उससे उत्पन्न होते हैं कर्म, कर्म के अनुकूल होता है भोग। यह श्रृंखला कल्पित नहीं है अपितु सहज ही में जानी जा सकती है। बच्चा उत्पन्न होते ही भोग पाता है। भोगों से उसकी बुद्धि का विकास होता है, उसी के अनुसार वह निर्वचन करके कर्तु, अकर्तु अन्यथा कर्तु की स्वतंत्रता का प्रयोग करता है, हर कर्म पीछे से भोग उत्पन्न करता है। उस भोग से आगे का विकास होता है। यह चक्र कभी बन्द नहीं होता हम केवल इस चक्र से घबराने या उस पर विश्वास न करने या उसकी ओर से आँख मूंद लेने मात्र से इस चक्र से छुटकारा नहीं पा सकते। हाँ हम चक्र को समझकर यदि हम ठीक रीति से अपने कर्तव्यों का पालन करें तो अवश्य ही हमारी उन्नति हो सकती है। परिस्थितियाँ कितनी ही निश्चित क्यों न हों उस निश्चितता के भीतर भी जीव की स्वतंत्रता की गुञ्जायश है। जेल में कैदी पूर्ण रुप से कैदी हैं फिर भी कैदी को कैद करने के लिये जो काम दिया जाता है उसके करने में वह अपना विवेक प्रयुक्त कर सकता है। अच्छा करने पर अधिकारी संतुष्ट रहते हैं। अन्यथा उनकी अप्रसन्नता और कभी कभी दण्ड भी प्राप्त होता है। अत: सिद्ध है कि जेल का कैदी भी कर्म करने में स्वतंत्र और भोग में परतंत्र हैं। स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य की सीमायें अवश्य भिन्न हैं। और होनी भी चाहिये क्योंकि यह भी तो कर्मों का फल है। श्रेष्ठ पुरुषों को लोक में भी निकृष्ट लोगों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता रहती है। पुलिस चोर पर दृष्टि रखती है साह पर नहीं, यह सब मानवी कार्य नैसर्गिक नियम का अनुकरण मात्र हैं।

(प्रश्न २७)-आप तो स्वतंत्रता और परतंत्रता दोनों से चिपटे हुये हैं, या तो यह मानिये कि संसार की समस्त चीज़ें किसी नियन्ता के वश में हैं उसके विरुद्ध पत्ता भी नहीं हिल सकता या यह मानिये कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। दो परस्पर विरोधी बातें कैसे ठीक हो सकती हैं?

उत्तर:-जिनको आप परस्पर विरोधी बातें कहते हैं वह परस्पर विरोधी हैं नहीं। केवल समझ का फेर हैं। भिन्नता और विरोध के अर्थों में भेद है। पीलापन और लाली परस्पर विरुद्ध नहीं लेकिन अंधेरा और उजाला परस्पर विरुद्ध हैं। जहाँ और जब उजाला होगा अंधेरा न होगा। इसी प्रकार जीव की स्वतंत्रता की सीमा है और ईश्वर के नियंत्रण की भी सीमा है। जरा सा विचार कीजिये। आप बोलते हैं, आपकी जीभ आपके आधीन है, आप उस जीव से शुभ और अशुभ दोनों बोल सकते हैं। कभी आज़मा लीजिये। ईश्वर का जीभ पर इतना नियंत्रण है कि आप उससे स्वतंत्रता पूर्वक काम ले सकें। जीभ पर आपका तो कोई नियंत्रण नहीं। आपने उसे बनाया नहीं न आपके हाथ में है कि उस जीभ में कोई दोष आ सके। फिर भी वह आपकी जीभ है। आप उसको अपनी इच्छा के अनुसार प्रयुक्त कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि आप किसी सीमा तक ईश्वर के नियंत्रण में हैं और किसी सीमा तक स्वतंत्र हैं। यह स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य आपकी स्वयं अनुभूति है आपकी कल्पना नहीं। एक उदाहरण लीजिये:-एक नदी है। उस पर पुल बँधा हुआ है। उस पुल के दोनों तरफ आदमी के कद के बराबर ऊँची ऊँची बाढ़ लगी हुई है। आप चलने में स्वतंत्र भी हैं और परतंत्र भी। उन बाड़ों के बीच-आप मजे से चल सकते हैं दौड़ सकते हैं। परन्तु बाड़ों को पार नहीं कर सकते। जिसने पुल बनाया उसने आपको एक सीमा तक स्वतंत्रता दी। उससे बाहर परतंत्र कर दिया यह सब आपकी भलाई को दृष्टि में रख कर किया गया। इसी प्रकार नियन्ता ने भी सृष्टि की ऐसी व्यवस्था कर दी कि आपके स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य दोनों की सीमा बनी रहे। यह नियंता की बुद्धिमत्ता और आपके कल्याण का सूचक है। आप सर्वथा परतंत्र होते तो आपका विकास न होता। आपको अपनी बुद्धि के प्रयोग का कोई अवसर न मिलता? यदि आप सर्वथा स्वतंत्र होते तो आप बुरा काम करके भी भला फल चाहते। दूसरी बात यह है कि जीव एक नहीं है। सबको पूर्ण स्वतंत्रता देना कल्पना मात्र है। एक की स्वतंत्रता दूसरे की परतंत्रता का कारण हो जाती है। सड़क पर यदि सभी यात्री पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लें और उसका प्रयोग करने लगें तो एक गाड़ी, दूसरी गाड़ी से टकरा जाये अत: स्वतंत्रता की सीमा भी होती है।

एक और उदाहरण लीजिये:-परीक्षार्थी परीक्षा में बैठा हुआ है। प्रश्नपत्र और उत्तम पत्र उसके हाथ में हैं। वह स्वतंत्र है कि किसी प्रश्न का जो चाहे उत्तर दे। परन्तु दूसरे परीक्षार्थी से बात नहीं कर सकता, स्वतन्त्र भी है और परतंत्र भी। स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य की सीमायें हैं। यह दोनों बातें परीक्षार्थी के हित को दृष्टि में रख कर नियत की गई हैं। परीक्षार्थी जो लिखेगा उसका फल अङ्क रुप में पाने में वह परतंत्र है, परन्तु परीक्षा के समय भी नियत के भीतर है। आप क्या कहेंगे? परीक्षार्थी पूर्णतया स्वतंत्र है या पूर्णतया परतंत्र। दोनों में से एक भी नहीं। जब जीव अनेक हैं तो वे पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हो सकते। हाँ केवल एकदशा में हो सकते हैं। अर्थात् जब उन जीवों का विकास इतना उच्चतम हो जाए कि वह तंत्र या नियम को स्वयं समझने लगे और उनका उल्लंघन करें ही नहीं। यदि सब परीक्षार्थी अत्यन्त विश्वास पात्र हो जाएं तो निरीक्षकों की आवश्यकता न पड़े। यदि सभी जीव पूर्ण ज्ञानी या मुक्त हो जाएं तो किसी को किसी से डर न रहे। यदि सभी नागरिक पूर्ण शिक्षित और विचारशील हो जाएं तो सड़कों की मोड़ों पर पुलिस के पहरे की आवश्यकता न हों। फिर तो सृष्टि की ही आवश्यकता न पड़े परन्तु जिस सृष्टि की हम विवेचना कर रहे हैं उसमें अल्पज्ञ जीव हैं जो विकास के भिन्न भिन्न स्तरों पर हैं अत: उनकी स्वतंत्रता और परतंत्रता की भी सीमायें हैं और वह सीमायें कर्मवाद को पुष्ट करती हैं उसको काटती नहीं।

(प्रश्न २८)-परमात्मा ने ऐसा जीव क्यों बनाया जो कर्म करने में स्वतंत्र है? यदि हमको यह आजादी न होती तो हम पाप न करते और दु:खरुपी फल के भागीदार न होते।

उत्तर-आपने अधूरी बात सोची। यदि स्वतंत्र न होते तो पुण्य भी न

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पृष्ठ 2 का शेष-सत्यं शिवं सुन्दरम्

इस कसौटी को सम्मुख रख कर अर्थ किया जाए तो न उनमें इतिहास मिलता है, न बुहदेवतावाद, न जंगलीपन और न ही विकासवाद।

19वीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द, राजाराम मोहन राय केशवचन्द्र सेन आदि हुए। ऋषि दयानन्द को छोड़कर सभी एक तरफ हिन्दू समाज के पिछड़ेपन को स्वीकार करते थे, दूसरी तरफ पाश्चात्य देशों की प्रगतिशीलता। वे सभी हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दुत्व को ही समाप्त करने पर तुले थे। वहीं ऋषि दयानन्द ने हिन्दुओं को हिन्दू रहते हुए नवीनता के रंग में रंग दिया। कोई भी समाज अपने भूत के बिना जीवित नहीं रह सकता। भूत में पैर रखकर भविष्य की तरफ बढ़ना, पीछे भी दृष्टिपात करना, आगे भी देखना, यही समाज के जीवन्त रहने का गुर है। भूत को छोडोगे तो वृक्ष की जड़ कट जाएगी, भविष्य को नहीं देखोगे तो उठ नहीं पाओगे-यही सत्यार्थ प्रकाश का सन्देश है। यही ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य का संदेश है। यही ऋषि दयानन्द का प्रयास जब दुनिया में प्रसारित हुआ तो मैक्समूलर व अन्य पाश्चात्य विद्वानों को स्वीकार करना पड़ा कि वेद प्राचीनतम ग्रन्थ है और ज्ञान के भण्डार है।

सत्यार्थ प्रकाश अर्थात् ''सत्य अर्थों का प्रकाश'' जो सत्य है उसी का प्रचार प्रसार और वही सत्य जो सनातन है, शिव है, कल्याणकारी है, वही तो सुन्दर है। यही है ''सत्यं शिवं सुन्दरम्।''

पृष्ठ 6 का शेष-कर्म का सिद्धान्त

करते और सुख भी नहीं मिलता। परीक्षार्थी स्वतंत्र होता है तभी तो अच्छा पर्चा करने पर पुरस्कार पाता है। अन्यथा पुरस्कार कैसा?

दूसरी सोचने और याद रखने वाली बात यह है कि कर्मवाद जीव को ईश्वर द्वारा उत्पन्न नहीं मानता। यदि ईश्वर ने जीव को बनाया होता तो बीसियों उलझनें उत्पन्न हो जातीं अर्थात् जीव के अस्तित्व, उसके कर्मों, उसके स्वातंत्र्य आदि का उत्तरदायित्व केवल ईश्वर के ही सिर होता। ईश्वर ने हमको पाप करने में सशक्त बनाया ही क्यों? यदि ईश्वर हमारी जीभ को ऐसा बनाता है कि वह सच बोलने के लिये ही खुलती, झूठ के लिये खुलती ही नहीं तो हम झूठ बोल ही न सकते।

(प्रश्न २९)-आपने तो गज़ब कर दिया। क्या जीव ईश्वर का बनाया नहीं? यह तो ईश्वर पर दोष लगाना है।

उत्तर-गज़ब नहीं। तथ्य यही है। किसी युक्ति से इससे भिन्न बात सिद्ध नहीं होती। यदि ईश्वर जीव को बनाता तो दोषी ठहरता। क्योंकि यह समस्त सृष्टि उसके बनाये हुये जीवों के लिये होती। प्रश्न होता कि जीव को बनाया ही क्यों? अपने लिये या अन्य के लिये। अन्य कोई था नहीं अतः अपने लिये। तो ईश्वर स्वार्थी सिद्ध होता है। जो ऐसा मान बैठे हैं (बहुत से आस्तिक इसी भ्रम में हैं) वे यह नहीं बता सकते कि ईश्वर ने ऐसी दुःखमयी सृष्टि क्यों बनाई। इसी प्रकार जो लोग जीव को ईश्वर का केवल अंश मात्र मानते हैं वह भी कर्मवाद पर पूर्ण विचार नहीं करते। जीव को ईश्वर के अंश मानना तो ईश्वर को अखंड और अखंडनीय मानने से इन्कार करना है। यह दोष ईश्वर पर लागू होगा। ईश्वर का एक अंश पाप करे और दूसरा उसका दण्ड दे। बेटे ने दाबात की स्याही फैला दी। बाप ने उसके चाँटा मारा। दोनों ही ईश्वर के अंश थे। ऐसी काल्पनिक बात तो कल्पना मात्र है हम वर्तमान सृष्टि की बात नहीं सोचते। काल्पनिक सृष्टि की बात करते हैं।

(प्रश्न ३०)-आपकी यह बात विचित्र सी लगती है।

उत्तर:-विचित्र सी इसलिये लगती है कि लोगों ने विचित्र विचित्र कल्पनायें कर रखीं हैं। वे वातावरण में फैली हुई हैं। अतः उनसे भिन्न तथ्य को लोग विचित्र कहते है। आप सोचिये और शास्त्र का अध्ययन कीजिये तो आप सत्यता को जान सकेंगे। हम तो ऐसी बात कह रहे हैं जिसको आप युक्तियों के आधार पर सोच सकते हैं। (क्रमशः)

पृष्ठ 4 का शेष-श्रीभगवत गीता...

का (विनाशाय) विनाश करने के लिए (च) और (धर्म संस्थापनार्थाय) धर्म की ठीक तरह से स्थापना करने के लिए (मैं) (युगे, युगे) युग-युग में (सम्भवामि) प्रकट हुआ करता हूँ।

भावार्थ-इस श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं युग-युग में साधुओं की रक्षा के लिए, दुष्ट पापियों का विनाश करने के लिए सच्चे धर्म की स्थापना के लिए जन्म लिया करता हूँ। इस श्लोक में भी श्रीकृष्ण अपने को ईश्वर का अवतार नहीं बता रहे हैं। वे एक आप्त पुरूष के रूप में अपनी भावना को व्यक्त कर रहे हैं।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीना श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजयते।।
गीता 6.41।।

अर्थ-(योगभ्रष्टः) वह योगभ्रष्ट (पुण्यकृताम्) पुण्य कर्म करने वालों के (लोकान्) लोकों को (प्राप्य) प्राप्त होकर और (शाश्वतीः) वहाँ बहुत (समाः) वर्षों तक (उषित्वा) रह कर (फिर यहाँ) (शुचीनाम्) शुद्ध (ममता रहित) (पीमताम्) श्रीमानों के (गेहे) घर में (अभिजायते) जन्म लेता है।

भावार्थ-योग में सिद्धि प्राप्त न कर सकने वाला व्यक्ति योग भ्रष्ट हो जाता है और वहां बहुत वर्षों तक रह लेने के बाद कर्म क्षीण होने पर इस लोक के किसी श्रीमान् के घर में जन्म लेता है।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।गीता 6.42।।

अर्थ-(अथवा) अथवा (वैराग्यवान् योगभ्रष्ट) (धीमताम्) ज्ञानवान् (योगिनाम्) योगियों के (कुले) कुल में (एव) ही (भवति) जन्म लेता है (ईदृशम्) इस प्रकार का (यत्) जो (एतत्) यह (जन्म) जन्म है। (यह) (लोके) संसार में (हि) निःसन्देह (दुर्लमतरम्) बहुत ही दुर्लभ है।

भावार्थ-वैराग्यवान् व्यक्ति और योग भ्रष्ट व्यक्ति ज्ञानी योगियों के कुल में ही जन्म लेता है। इस प्रकार का जन्म अत्यन्त दुर्लभ होता है।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते।।गीता 6.44।।

अर्थ-(सः) वह श्रीमानों के ग्रह में जन्म लेने वाला योग भ्रष्ट मनुष्य (अवशः) भोगों के परवश होता हुआ (अपि) भी (तेन) उस (पूर्वाभ्यासेन) पूर्व जन्मों में किए हुए अभ्यास (साधन) के कारण (एव) ही (ह्रियते) परमात्मा की तरफ खिंच जाता है (हि) क्योंकि (योगस्य) योग (ममता) का (जिज्ञासुः) जिज्ञासु (अपि) भी शब्द ब्रह्म) वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों का (अति वर्तते) अतिक्रमण कर जाता है।

भावार्थ-वैराग्यवान् योगभ्रष्ट योगी मृत्यु के बाद किसी योगी अथवा किसी श्रीमान् के घर में जन्म लेते हैं। परन्तु कुछ लोग मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिष)।
अनेकजन्मंसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।गीता 6.45।।

अर्थ-(तु) परन्तु (योगी) जो योगी (प्रयत्नात्) प्रयत्नपूर्वक और संशुद्ध किल्विषः जिसके पाप नष्ट हो गए हैं तथा (अनेक जन्म संसिद्ध) जो अनेक जन्मों से सिद्ध हुआ है वह योगी (ततः) फिर (पराम्) परम (गतिम्) गति को (याति) प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ-परन्तु जो योगी प्रयत्नपूर्वक यत्न करता है और जिसके पाप नष्ट हो गए है तथा जो अनेक जन्मों से सिद्ध हुआ है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

वीतरागभय क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।गीता 4.10।।

अर्थ-(वीत रागभय क्रोधाः) राग, भय और क्रोध से रहित (मन्मया) मुझमें (ईश्वर में) तल्लीन (माम्) मेरे ही (ईश्वर के ही) (आश्रिताः) आश्रित तथा (ज्ञानतपसा) ज्ञानरूप तपसे (पूताः) पवित्र हुए (बहवः) बहुत से भक्त (मद्भावत्) परमात्मा के स्वरूप को (आगतः) प्राप्त हो चुके हैं।

भावार्थ-काम, क्रोध, भय और राग से रहित परमात्म परायण व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

आर्य समाज पटियाला में सामवेद परायण यज्ञ का आयोजन

आर्य समाज, आर्य समाज चौक पटियाला में सात दिवसीय सामवेद परायण यज्ञ का आयोजन दिनांक 16 अप्रैल से 23 अप्रैल 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के सदस्य पूर्णाहुति के दिन आहुतियां प्रदान करते हुये जबकि कार्यक्रम में उपस्थित आर्य जन एवं छात्राएं।

आर्य समाज मंदिर पटियाला में सात दिवसीय सामवेद परायण यज्ञ का आयोजन दिनांक 16 अप्रैल से 23 अप्रैल 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। शहर के अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने यज्ञ के ब्रह्मा पंडित गजेन्द्र शास्त्री के सान्निध्य में सामवेद के पवित्र मंत्रों के साथ यज्ञ में आहुतियां अर्पित की। पंडित गजेन्द्र शास्त्री ने सामवेद के मंत्रों की व्याख्या की तथा बताया कि सामवेद के द्वारा ईश्वर की उपासना करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ, चतुष्टय प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श वाक्य के अनुसार जीवन जीना सिखाया जाता है तथा सर्वे भवन्तु सुखिन: का पाठ किया जाता है। इसलिए सभी जीवों से प्रेम करने की आदर्श भावना वेद से सीखने को मिलती है। किसी के प्रति भेदभाव की भावना किसी के अन्दर न हो, जाति के आधार पर समाज का विभाजन न हो, ऊँच-नीच के आधार पर किसी के साथ छल न हो, इसके लिए वेद ने समरसता पर बल दिया है। समरसता के आधार पर ही समाज में सौहार्द की भावना आ सकती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि तुम सब मनुष्यों के जल-स्थान एक समान हों और तुम सब अन्न को एक समान ही बाँट कर लो। मैं तुमको एक ही पारिवारिक बन्धन से बाँधता हूं। इसलिए तुम सब मिलकर कार्य करो। दिनांक 23 अप्रैल को मुख्य कार्यक्रम में डा. सुनील आर्य, डा. संजय सिंगला, आर्य समाज के प्रधान श्री राज कुमार सिंगला, डा. ओम देव आर्य, जतिन्द्र शर्मा, हर्षा बधवा, कर्नल आनन्द मोहन सेठी, परवीन चौधरी, बैजनाथ मुख्य यजमान बने और वेद मंत्रों के साथ पूर्णाहुति प्रदान की।

पूर्णाहुति के पश्चात पंडित उपेन्द्र आर्य ने सुमधुर भजनों के द्वारा श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया व पूरा समय हाल तालियों की गड़गडाहट से गूंजता रहा। दिल्ली से पधारे आचार्य शिवपूजन शास्त्री जी ने अपने वक्तव्य में संविधान शब्द की व्याख्या करते हुये कहा कि संविधान में धान शब्द आता है जिसका अर्थ इसे उगने वाले अर्थात किसान है। किसान का अर्थ अन्न दाता है जिसके बिना कोई देश नहीं चल सकता। उन्होंने आगे कहा कि आज भी बच्चों को विद्यालय से अवकाश प्राप्त हो तो बच्चों को गांव ले जाकर खेती करानी चाहिये ताकि उनको अन्न व खेती की महता समझ आए। सप्ताह भर चले सामवेद परायण यज्ञ में अनेक आचार्यों जिसमें चंडीगढ़ से पंडित उपेन्द्र आर्य, पंडित राकेश मोहन शास्त्री, पंचकूला से आचार्य वैदिक शास्त्री, दिल्ली से आचार्य डा. शिवपूजन शास्त्री ने अपने उद्बोधनों से सभी को बांध कर रखा। इस साप्ताहिक कार्यक्रम में अनेक गणमान्य व्यक्तियों डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पटियाला के प्रिंसीपल विवेक तिवारी, आर्य कन्या सीनियर सैकेंडरी स्कूल पटियाला के प्रिंसीपल संतोष गोयल अपने अध्यापिकाओं व बच्चों के साथ तथा विभिन्न आर्य समाजों से श्री यशपाल सिंगला समाना, लव कुमार सूद सरहिन्द, अमित शास्त्री नाभा, ब्रह्मदत्त शास्त्री राजपुरा और अनेक आर्य समाजों के पदाधिकारी, पतंजलि से राजेश कौल, बी.के.वर्मा, रमण वर्मा, अरनौली से चरणजीत सिंह, कुलदीप सिंह आदि मौजूद रहे।

एस.आर.प्रभाकर पूर्व प्रिंसीपल डी.ए.वी.स्कूल पटियाला व चांद राम आर्य अजमेर का व्याख्यान हुआ। मंच का संचालन बिजेन्द्र शास्त्री जी ने किया। कार्यक्रम की समाप्ति पर माननीय प्रधान राज कुमार सिंगला ने सभी गणमान्य अतिथियों को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया और सभी दान दाताओं व उपस्थित लोगों का धन्यवाद किया। कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये सभी आर्य समाज पटियाला की कार्यकारिणी सदस्यों को साधुवाद दिया और कहा कि भविष्य में भी सभी ऐसे ही आर्य समाज की सेवा करते रहेंगे। कार्यक्रम के अंत में ऋषि लंगर की सेवा का आयोजन डा. संजय सिंगला ओम्निया अस्पताल पटियाला द्वारा किया गया।

-विजेन्द्र शास्त्री
मंत्री आर्य समाज चौक पटियाला

डा.सूर्यकांत शोरी आर्य समाज बरनाला के प्रधान निर्वाचित

आर्य समाज बरनाला में रविवार दिनांक 30 अप्रैल 2023 को साप्ताहिक सत्संग के पश्चात आर्य समाज के प्रांगण में श्री भारत मोदी जी की अध्यक्षता में आर्य समाज का चुनाव प्रक्रिया सम्पन्न हुई जिसमें आर्य समाज के सदस्यों ने डा. सूर्यकांत जी शोरी को सर्वसम्मति से आर्य समाज का प्रधान मनोनीत किया। डा. सूर्यकांत जी शोरी द्वारा आर्य समाज बरनाला की निम्नलिखित कार्यकारिणी गठित की गई। वरिष्ठ उप प्रधान श्री तिलक राम आर्य, उप प्रधान श्री विजय आर्य, उप प्रधान श्री राम कुमार सोबती, मंत्री श्री कुलदीप जोशी, कोषाध्यक्ष श्री राज महेन्द्र शर्मा, पुस्तकालय अध्यक्ष श्री राम चन्द्र आर्य, कार्यकारिणी के सदस्य एडवोकेट केवल जिन्दल, श्री संजीव शोरी, एडवोकेट प्रदीप गोयल को बनाया गया। इससे पूर्व आर्य समाज की यज्ञशाला में हवन यज्ञ किया गया। सभी सदस्यों ने मिल कर आहुतियां प्रदान की। यज्ञ के पश्चात आर्य समाज के पुरोहित ने कहा कि यज्ञ शब्द अनन्तता का सूचक है। स्वयं जीवन भी एक यज्ञ है, इस जीवन यज्ञ को सुनियमित बनाने के लिए ब्रह्मयज्ञ एवं देवयज्ञ दोनों ही अपेक्षित हैं। ब्रह्मयज्ञ चिन्तन में सम्बद्ध हैं। आत्मा को बलवान बनाने के लिए, इन्द्रियों को संयमित एवं सशक्त करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सारथि के साथ रथ को सुचारू रूपेण चलाने योग्य। इन्द्रियों को बलवान, यशस्वी एवं पवित्र बनाने के लिए ब्रह्म यज्ञ किया जाता है। यज्ञ क्या है? इसका स्वरूप, उपयोगिता तथा सीमा क्या है? क्या यज्ञ पात्र, यज्ञशाला, हवन सामग्री ही इसके साधन हैं? वस्तुत: तो प्रत्येक श्रेष्ठतम कल्याण कार्य यज्ञ है। यज्ञ शब्द का मौलिक अर्थ यजधातु में है। यज-देवपूजा संगतिकरणार्थ दानेषु अर्थात् जिसमें प्राणीहित, लोकहित एवं सबके प्रति सद्भावना तथा सहृदयता के कार्य सम्पन्न होते हैं वह कर्म श्रेष्ठतम कर्म है, यज्ञ का यही स्वरूप है। यज्ञ का ही स्वरूप यह संसार है। सृष्टि यज्ञ प्राकृतिक देव शक्तियां करती हैं।

डा. सूर्यकांत शोरी जी के आर्य समाज बरनाला के प्रधान मनोनीत होने पर उनका फूलों का हार पहना कर स्वागत करते हुये आर्य समाज के सदस्य।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org